विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

RNI रजि. नं. 19156 • बुद्धवर्ष 2570, 14 जून, 2026, वर्ष 2, अंक 4 • (संशोधित) (जुलाई 1971 से लगातार प्रकाशित) • प्रति अंक शुल्क ₹ 0.00

अनेक भाषाओं में पत्रिका देखने की लिंक : http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ 100.00, (भारत के बाहर भेजने के लिए US $ 50)

धम्मवाणी

हंसादिच्चपथे यन्ति, आकासे यन्ति इद्धिया।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा, जेत्वा मारं सवाहिनिं।।

— धम्मपदपाळि- 175, लोकवग्गो

हंस सूर्य-पथ (आकाश) में जाते हैं, (कोई) ऋद्धि-बल से आकाश में जाते हैं। पंडित लोग सेनासहित मार को जीत कर (इस) लोक से (निर्वाण को) ले जाये जाते हैं (अर्थात, निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।)

बुद्ध-स्थलों की धर्म यात्रा 2001

पूज्य गुरुजी और पू. माताजी ने पुराने साधकों का आग्रह स्वीकार करके 14 दिनों की धर्मयात्रा में शामिल होने का निर्णय किया जो कि सन 2001 में 17 फरवरी से 2 मार्च तक संपन्न हुई। चलती ट्रेन में सामूहिक साधनाएं होतीं, गुरुजी की धम्मवाणी गूंजती, और उनके निर्देश (लाउडस्पीकर्स पर) सभी साधकों को हर डिब्बे में स्पष्ट सुनाई देते। ट्रेन, बस और कारों का काफिला भगवान बुद्ध के तीर्थ-स्थलों पर साधना करते हुए चलता रहा। इस यात्रा के दौरान धम्मविमुत्ति, कुशीनगर में 27 फरवरी को उन्होंने जो प्रवचन दिया, वह अप्रेल व मई 2017 की 'विपश्यना' पत्रिका में दो अंकों में प्रकाशित हुआ था। अब इन्हें पुनः संपादित करके एक साथ प्रकाशित कर रहे हैं। (सं.)

मेरे प्यारे विपश्यी साधक-साधिकाओ!

आज हम एक ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थान पर एकत्र हुए हैं, जहां एक महापुरुष की बहुत लंबी यात्रा पुरी हुई। अनगिनत कल्प पूर्व यह व्यक्ति ब्राह्मण सुमेध के नाम से एक तपस्वी था और उस समय संसार में दीपंकर नाम के सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हुये थे। यह व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया तो इसके मन में बहुत बड़ा धर्म-संवेग जागा—"मैं भी इसी प्रकार सम्यक संबुद्ध बनूं तो मेरे द्वारा कितनों का कल्याण होगा।" इस धर्म-संवेग के आधार पर वह अपनी धर्म कामना दीपंकर सम्यक संबुद्ध के सामने प्रकट करता है।

अनेक लोग ऐसे होते हैं, जो किसी सम्यक संबुद्ध को देख करके मन में ऐसे भाव जगाते हैं कि यह व्यक्ति संसार का इतना कल्याण कर रहा है, मैं भी इस अवस्था पर पहुँच कर संसार का कल्याण कर सकूं। सम्यक संबुद्ध जांच करते हैं कि यह व्यक्ति सचमुच इस लायक है या नहीं? अभी लायक नहीं है तो केवल मुस्कुरा कर रह जाते हैं। और लायक है तो इसमें लोक सेवा का जो भाव जागा है, उसमें दृढ़ता भी है? या इस समय की परिस्थिति में अभी जागा और कल समाप्त हो जायेगा?

दूसरी बात यह देखते हैं कि इसमें क्षमता कितनी है? क्या पूर्व के अनेक जन्मों में इसने अपनी पारमितायें पूरी की हैं? यदि हां, तो कितनी? अगर उसने इतनी पारमितायें पूरी कर ली हैं कि सम्यक संबुद्ध उसे विपश्यना सिखायें तो साधना करते-करते वह भवमुक्त हो जायेगा, अरहंत हो जायेगा? उसका भविष्य देखते हैं- हां, यह व्यक्ति इस लायक है कि आज भी मुक्त हो सकता है और फिर भी चाहता है कि मैं सम्यक संबुद्ध बनूं; यह समझते हुए भी कि सम्यक संबुद्ध बनने में वही पारमितायें कितनी बड़ी मात्रा में एकत्र करनी होती हैं, अनगिनत जन्मों तक काम करना होता है, इतना समय लगता है! क्या इस व्यक्ति में सचमुच त्याग की यह भावना है?

यह व्यक्ति स्वयं भी समझता है कि मैं इसी वक्त इनकी शिक्षा से मुक्त अवस्था प्राप्त कर सकता हूं। लेकिन हाथ आयी हुई उस मुक्ति को त्यागता है। मेरे अकेले मुक्त होने से क्या होगा? जैसे इन्होंने बोधिसत्व के रूप में अपने अनेक जन्मों में लोक कल्याण किया और अपनी पारमितायें बढ़ाते गये। वैसे मैं भी अनेक जन्मों में भले कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पारमिताओं को बढ़ाते-बढ़ाते उस अवस्था तक पहुँचूं जहां मैं सम्यक संबुद्ध हो जाऊं।

एक ओर बलिदान की यह भावना—हाथ में आयी हुई मुक्ति को त्यागता है, दूसरी ओर अनेक प्राणियों के भले के लिये अनेक जन्मों का कष्ट सहने के लिये तैयार है। वे देखते हैं सचमुच यह व्यक्ति इस लायक है, तब उसका भविष्य देखते हुए आशीर्वाद देते हैं कि चार असंख्य एक लाख कल्पों के बाद तू कपिलवस्तु में शुद्धोधन के घर, महामाया की कोख से जन्म लेगा और उस समय सम्यक संबुद्ध बन पायेगा। तब से यह व्यक्ति जन्म पर जन्म लिये जा रहा है, कभी इस योनि में, कभी उस योनि में। भिन्न-भिन्न योनियों के उन प्राणियों को धर्म की ओर उन्मुख करने के लिये, उनमें धर्म की चेतना जगाने के लिये और अपनी पारमिताओं को और अधिक पुष्ट करने के लिये, कितना समय लगा? गिनती नहीं!! इतना समय लगने के बाद सिद्धार्थ गौतम के नाम से जन्म हुआ और शरीर के लक्षण देखने वालों ने कहा कि यह व्यक्ति घर में रहेगा तो चक्रवर्ती सम्राट होगा, घर छोड़ा तो सम्यक संबुद्ध होगा। उसे चक्रवर्ती सम्राट नहीं, सम्यक संबुद्ध बनना था; सम्यक संबुद्ध बना।

"बोधगया" में बोधिवृक्ष के नीचे उसे सम्यक संबोधि प्राप्त हुई, मुक्त अवस्था प्राप्त हुई। 29 वर्ष की उम्र में घर छोड़ा था, 35 वर्ष की अवस्था में सम्यक संबुद्ध हुआ। उसके बाद के 45 वर्ष, रात-दिन लोक-सेवा ही लोक-सेवा। रात को केवल एक प्रहर (लगभग 3 घंटे का समय) लेटते थे, सजग, सम्प्रज्ञानी रह करके, बाकी समय लोक-सेवा ही लोक-सेवा। इतनी सारी करुणा के बल पर लोक-सेवा करते हुये इसी स्थान पर उनके शरीर की च्युति हुई, जिसे "महापरिनिर्वाण" कहा गया।

निर्वाण कहते हैं, उस अवस्था को जहां इंद्रियां काम करना बंद कर देती हैं। विपश्यना करते-करते, मन के विकार निकलते-निकलते, वह अवस्था आती है जब अधोगति की ओर ले जाने वाले सारे कर्म-संस्कार समाप्त हो जाते हैं, तब पहली बार निर्वाणिक अवस्था का साक्षात्कार होता है और तब वह व्यक्ति "श्रोतापन्न" कहलाता है। अब उसके लिए अधोगति के द्वार बंद हो गये। वह अधिक से अधिक सात बार जन्म लेगा, उससे अधिक नहीं, उससे कम भले हों। और आगे बढ़ता है तो "सकदागामी"

होता है। अब वह केवल एक बार जन्म लेगा इस काम-लोक में, यानी, मनुष्य लोक या देव लोक में। "अनागामी" हुआ तो केवल ब्रह्म-लोक में जन्म लेगा। उसके आगे की डुबकी लगी तो "अरहंत" होकर सारे लोकों से मुक्त हो जाता है।

जब सम्यक संबुद्ध बनता है तो ये चारों अवस्थाएं एक के बाद एक प्राप्त होती हैं। सम्यक संबुद्ध हुआ, तो निर्वाण हुआ, पूर्ण मुक्त हुआ। उसे "सउपधिसेस निर्वाण" कहते हैं, यानी, अभी उपधि है, माने इस जन्म को आगे बढ़ाने वाले ऐसे कर्म-संस्कार नहीं रहे जो नया जन्म दे सकें, लेकिन इस जन्म में, इस शरीर का बोझ ढोने के लिए अभी "सउपधि" है। और जब ऐसे व्यक्ति की, ऐसे महापुरुष की, ऐसे अरहंत की शरीर-च्युति होती है तब उसके बाद उसका कोई जन्म नहीं होता। माने अनुपधिसेस- अब कोई उपधि नहीं, कोई जन्म नहीं। "परिनिर्वाण"- परिपूर्ण हुआ निर्वाण। ऐसे महापुरुष का "महापरिनिर्वाण" इसी स्थान पर हुआ।

उस व्यक्ति में कितनी करुणा है! सारे जन्मों में करुणा ही करुणा, करुणा ही करुणा। तभी तो लोक सेवा करेगा; नहीं तो कैसे करेगा? और इस जीवन में भी करुणा ही करुणा, करुणा ही करुणा। महापरिनिर्वाण का समय नजदीक आ रहा है। तीन महीने पहले यह घोषणा की, जबकि वे वैशाली में थे— "आगामी 'वैशाख पूर्णिमा' को, यानी, तीन महीने के बाद इस शरीर की च्युति होगी।" वहां से चलते-चलते यहां तक आये। रास्ते में एक दिन पहले "चुंद" नामक गृहस्थ ने उनको भोजन-दान दिया, जो ऐसे कुकुरमुत्तों का था, जो जहरीले होते हैं। उन्होंने स्वयं तो खा लिया पर अन्य भिक्षुओं को देने से रोका और कहा, इसे कोई न खाये। उनका तो "परिनिर्वाण" होना ही था। पर करुणा जागती है उस चुंद पर; अरे, मेरे बाद कहीं लोग चुंद को बुरा न कहें—अरे, चुंद! तू कैसा पागल है! तूने ऐसा भोजन दिया कि भगवान का शरीर छूटा- कहीं लोग ऐसा न कहें, इसलिए आनंद से कहते हैं, "मेरे बाद तू जाकर कहना उस चुंद को कि तूने बहुत बड़ा पुण्य का काम किया। सम्यक संबुद्ध बनने के पहले का जो भोजन होता है, बहुत पुण्यशाली होता है; जैसे सुजाता ने उन्हें खीर खिलायी, और जो अंतिम भोजन होता है वह भी उतना ही पुण्यशाली होता है। इतने जन्मों तक भव-संसरण करते-करते अब यह भव-चक्र समाप्त होगा, तो बहुत पुण्य है। उसके मन पर कहीं आघात न लगे। लोग भी उसके बारे में कोई ऐसी बात न करें।" कितनी करुणा है! कितनी करुणा है!

यहां एक जुड़वा साल वृक्ष के नीचे रुक कर कहा, बस यहीं मैं लेटूंगा। आनंद! सुबह होते-होते प्राण जायेंगे, महापरिनिर्वाण होगा। आस-पास मल्लों का गणराज्य, उनको जब पता लगेगा कि भगवान हमारे गणराज्य के इतने समीप आये और यहां उनका शरीर छूटा, आकर वे अंतिम बार दर्शन करते, यदि उनको यह मौका ही नहीं मिला तो वे तुझे लांछित करेंगे। तू जा! उनको खबर कर दे। आनंद गया, सारे नगर में खबर कर दी- कल सुबह होते-होते भगवान बुद्ध "महापरिनिर्वाण" को प्राप्त होंगे।

लोग वहां आने लगे। इतने लोग आ रहे हैं, नमस्कार करने के लिये। आनंद ने इतनी बड़ी भीड़ देखी तो कहा भाई! कुछ लोग इकट्ठे जाकर, बस, नमस्कार करो और चले जाओ! समय कहां? नमस्कार करो और चले जाओ! इस भीड़ में "सुभद्र" नाम का एक व्यक्ति आता है। वह कहता है कि मैं केवल नमस्कार करने नहीं आया, मुझे तो उनसे विद्या सीखनी है। उनके बाद न जाने तुम लोग ठीक से समझा सको कि नहीं; सिखा सको कि नहीं। आनंद कहता है कि तू पागल हुआ है, अब उनका शरीर छोड़ने का समय है, ऐसे समय तू उनको तंग मत कर, आराम से उनको प्राण छोड़ने दे। वह कहता है नहीं, मुझे तो उनसे धर्म सीखना है। ये कहता है- नहीं, तुझे नमस्कार करना हो तो कर, नहीं तो बगल हो जा, औरों को आने दे आगे। ये शब्द भगवान के कान में पड़ते हैं। कोई प्यासा व्यक्ति गंगा के पास आये और दूसरा उसका हाथ पकड़े, पानी मत पी लेना, गंगा को नमस्कार करके चला जा, तो गंगा में बाढ़ आती है- अरे, आनंद! आने दे। यह योग्य पात्र है। इसको मुझे धर्म सिखाने दे, और सुभद्र को धर्म सिखाते हैं। जो व्यक्ति अपना शरीर छोड़ते-छोड़ते इतनी करुणा से भरा है- अरे, एक व्यक्ति का तो कल्याण हो जाय! इसका कल्याण हो जाय! ये लक्षण हैं महापुरुष के; करुणा से भरे रहते हैं।

इस स्थान पर और भी महत्त्वपूर्ण घटनायें घटीं। एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना घटी- किसी ने पूछ लिया, "महाराज! आपके जाने के बाद आपका उत्तराधिकारी कौन होगा?" उत्तराधिकारी और कौन होगा रे? उत्तराधिकारी धर्म होगा। जो धर्म मैंने सिखाया है, वही तुम्हारा आचार्य होगा, गुरु होगा। किसी एक व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाया तो पंडागिरी चलेगी, पुरोहितगिरी चलेगी। व्यक्ति यदि उस ऊंची अवस्था तक न पहुँचा हो तो एक नशा रहता है कि जैसे लोग भगवान बुद्ध का सम्मान करते हैं, वैसे मेरा भी होना चाहिए- यह नशा धर्म को ले डूबता है। इसलिए धर्म ही उत्तराधिकारी है। धर्म का जो पालन करेगा, वह अपना कल्याण कर लेगा।

एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी, उनका "महापरिनिर्वाण" हुआ तो उनका प्रमुख शिष्य "महाकाश्यप" अभी जरा दूर है, सात दिन की यात्रा करेगा तब पहुँचेगा। उसके आने तक उनके शरीर की दाह क्रिया नहीं की गयी। काश्यप अपने 500 साथियों के साथ चला आ रहा है। उनमें से "सुभद्र" नामक नया-नया भिक्षु, बहुत बूढ़ा, उम्र बड़ी पर धर्म में बहुत कच्चा, वह बड़ा खुश होता है- अच्छा हुआ वह बूढ़ा मर गया। नाक में दम कर रखा था- ऐसा करो, ऐसा मत करो,...। अब वह चला गया, हमें छूट है, हम जो चाहे सो करेंगे। काश्यप ने देखा- भले, सारा संघ बहुत पका हुआ है, पर संघ में ऐसे पागल लोग भी हैं कि भगवान ने जो नहीं कहा वह भी उनके मुँह में डाल देंगें, भगवान ने ऐसा कहा, ऐसा कहा...। और जो कहा, वह उनके अनुकूल नहीं है तो उसको निकाल देंगे, तो ऐसे लोग धर्म को नष्ट कर देंगे। तब क्या किया जाय? इसलिए भगवान की जितनी वाणी है, वह सारी संगृहीत कर ली जाय।

सात दिन बाद जब दाहकर्म पूरा हुआ, उसके तीन महीने बाद, जहां हम राजगीर गये थे, वहां ऊपर उस "सप्तपर्णी गुफा" में पहला संगायन हुआ। 500 ऐसे भिक्षुओं ने जो बुद्ध के बहुत समीप थे और अरहंत थे, उन्होंने बैठ करके बुद्ध-वाणी का संगायन किया। बुद्ध ने ऐसा कहा, ऐसा कहा...; सब कहेंगे- हां ऐसा ही कहा...। विनय की शिक्षा, यानी, भिक्षुओं के नियमों की जो शिक्षा थी; उसे "उपालि", जो भिक्षुओं का बड़ा आचार्य था, और भिक्षुओं के नियमों को खूब जानता था, उसने उसका पाठ किया, बाकी सबने स्वीकार किया। आनंद को बाकी सारी बातों का ज्ञान था, उसने पाठ किया, लोगों ने स्वीकार किया। यह बहुत बड़ी बात हुई! उन दिनों कोई प्रिंटिंग प्रेस तो थी नहीं, कागज भी नहीं थे। इतना विशाल साहित्य, थोड़ा नहीं। इसे लोग याद ही तो करेंगे। अन्यथा कोई कहेगा- नहीं, मुझको तो ऐसा स्मरण है; कोई कहेगा ऐसा..., तो बिगड़ जायेगा सारा का सारा। ऑथेंटिक क्या है? प्रामाणिक क्या है? ऐसा हम मिल करके तय कर लें कि "भगवान की यह प्रामाणिक वाणी है। इसमें कोई अपनी ओर से कुछ जोड़े नहीं, निकाले नहीं"। यह पहली संगीति थी जिसने धर्म को जीवित रखा। इसके बाद तो यह परम्परा चल पड़ी। फिर दूसरी संगीति हुई, तीसरी हुई, चौथी संगीति श्रीलंका में हुई, फिर पांचवी हुई, और अब छठी संगीति भगवान बुद्ध के 2500 वर्षों के बाद, बर्मा में हुई। इस समय जो बुद्ध-वाणी, जो तिपिटक, पालि भाषा में, संसार के पांच देशों में ही था- बर्मा, श्रीलंका, थाईलैंड, कम्बोडिया और लाओस में—वहां के 2500 विद्वान भिक्षुओं को इकट्ठा किया गया और बुद्ध-वाणी का पारायण हुआ।

भगवान बुद्ध की सारी शिक्षा उनके समय भी बाहर गयी, लेकिन लगभग २५०-२७५ वर्ष बाद जब अशोक सम्राट हुआ, और उसके गुरु "मोग्गलिपुत्त तिस्स थेर" ने तीसरा संगायन किया, तब उसने भारत के बाहर धर्मदूत भेजे, यानी, स्थान-स्थान पर ऐसे अरहंत भेजे, जिनको सारी वाणी कंठस्थ थी और उसके साथ-साथ यह विपश्यना ज्ञान, यह विद्या जगह-जगह भेजी

गयी, तो श्रीलंका और बर्मा भी गयी। भारत का बड़ा दुर्भाग्य हुआ कि ५०० बर्ष बीतते-बीतते, आपसी झगड़ों को ले करके और कुछ अन्य कारणों से भी यह विद्या यहां पर लुप्त हो गयी- विपश्यना भी और वाणी भी। हम बहुत उपकार मानते हैं- "सम्राट अशोक" का और "मोग्गलिपुत्त तिस्स थेर" का; यदि उन्होंने यह विद्या बाहर नहीं भेजी होती तो यह सदा के लिए नष्ट हो जाती। हमें कैसे मिलती? इसका लाभ दुनिया में किसी को न मिलता। जिन पांच देशों ने वाणी को कायम रखा, वे सब इकट्ठे होते हैं। सबके उच्चारण भिन्न-भिन्न परंतु पालि वही है। सबकी लिपि भिन्न-भिन्न पर मामूली अंतर; कहीं छोटी "इ" की मात्रा या बड़ी "ई" की मात्रा। यों छोटी-मोटी भिन्नता परंतु ऐसा नहीं कि मूल वाणी में परिवर्तन आ जाय। इतने बर्षों तक संभाल कर रखा कि ऑथेंटिक हुई। इससे यह विश्वास होता है कि सचमुच यह बुद्ध वाणी है। इन्होंने नहीं संभाल कर रखा होता तो हमें कैसे प्राप्त होती? यह विपश्यना विद्या भी सभी जगह गयी परंतु नष्ट हो गयी, बर्मा ने संभाल कर रखा, इसलिए उनका उपकार मानते हैं।

अपने यहां और बाहर भी ऐसी मान्यता है, या किसी संत ने भविष्य वाणी की थी कि यह जो रत्न बर्मा (स्वर्णभूमि) भेजा जा रहा है, (बर्मा में स्वर्ण बहुत होता था इसलिए उसे स्वर्णभूमि कहते थे), वही (स्वर्ण) इस अनमोल रत्न को संभाल कर रखेगा। बाकी सारे देशों में नष्ट हो जायेगा। २५०० वर्ष पूरे होने पर यह विद्या, यह रत्न फिर अपने उद्गम देश, यानी, भारत देश में आयेगा। वहां के लोग बड़ी प्रसन्नता से इसे स्वीकार करेंगे, वहां स्थापित होगा, फिर सारे विश्व में फैलेगा। सारे विश्व के लोग इसे स्वीकार करेंगे।

यह वाणी और विद्या इस तरह क्यों रखी गयी, उसका एक कारण है। बूढ़ा भिक्षु "सुभद्र" जिसने यह घोषणा की थी कि अच्छा हुआ, वह मर गया...। यदि वह ऐसा न कहता तो शायद कोई सोचता भी नहीं कि इस वाणी को कायम रखें, अन्यथा इस तरह के लोग बिगाड़ देंगे। तो उसका भी उपकार मानते हैं, अच्छा किया उसने। बहुत बड़ी घटना घटी। और सबसे बड़ी बात यह कि इसके बाद किस तरह से लोगों ने भले ५०० वर्ष ही, पर इसे संभाल कर रखा।

हमारे सामने प्रमाण हैं इस बात के कि इस विद्या से देश को कितना बड़ा लाभ हुआ। कितनों का कल्याण हुआ। सम्राट अशोक एक शिलालेख में लिखता है, मेरे पहले कितने राजा हुये, कितने सम्राट हुये जो सब चाहते थे कि हमारी प्रजा में धर्म जागे। लोग बहुत शांति का जीवन जीयें, धर्म का जीवन जीयें, बड़ों का सम्मान करें, छोटों से प्यार करें, खूब दान देने की भावना हो आदि.., लेकिन कोई राजा सफल नहीं हुआ। चाहते सब थे, कोई सफल नहीं हुआ। फिर कहता है- मैं सफल हुआ। झूठ नहीं बोलता। झूठ बोलता तो उसका शिलालेख तोड़कर फेंक देते लोग। इतने वर्षों तक कायम रहा न! इसीलिए कहता है मैं सफल हुआ। क्यों सफल हुआ? एक तो उसने धर्मामात्य नियुक्त किये। अमात्य मतलब मंत्री; धर्म के मंत्री माने धर्म सिखाने वाले लोग; राज्य की ओर से धर्म सिखाने वाले लोग जगह-जगह जाकर धर्म सिखाते और इस बात को देखते कि लोग समझ रहे हैं कि नहीं? उनको धर्म पालन करने में क्या कठिनाई है? एक तो यह कारण रहा; फिर कहता है—अरे, यह तो बहुत छोटा-सा कारण था। इन उपदेशों से कौन बदलता है? थोड़ी देर बदलेगा, फिर वैसा का वैसा। मेरी सफलता का मूल कारण यह कि मैंने लोगों को ध्यान करना सिखाया, विपश्यना करनी सिखायी। आश्चर्य है, करोड़ों की आबादी वाला देश। कैसे यह विद्या फैलायी गयी? कैसे विद्या सिखायी गयी?

अब फिर समय आया, कोई न कोई रास्ता ऐसा निकलेगा कि यह विद्या सारे देश में फैलेगी और बहुत बड़ा कल्याण होगा, तो हमारे लिए बहुत बड़ी प्रेरणा की बात हुई कि यह विद्या कायम है। विपश्यना भी कायम है और वाणी भी। सारे ब्रह्मदेश में नहीं परंतु बहुत थोड़े से लोगों ने गुरु-शिष्य परम्परा से संभाल कर रखा। बाकी सारे संसार में लोक चक्र ऐसे ही चलता है। जिन थोड़े से लोगों ने संभाल कर रखा उनका बड़ा उपकार मानते हैं।

इस स्थान का बड़ा महत्व कि इस महापुरुष ने यहां इतनी लंबी यात्रा का अंत किया—"नत्थिदानि पुनब्भवोति"- अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। और इतना काम कर गये कि करोड़ों लोगों का कल्याण हुए जा रहा है, होता ही जायेगा। इस माने में इस स्थान का बहुत बड़ा महत्त्व है।

जो धर्म-विरोधी शक्तियां चाहती हैं कि धर्म आगे नहीं बढ़े, उनके प्रमुख को "मार" कहा जाता है। जब ये सम्यक संबुद्ध बने तब इसने बड़ा प्रयत्न किया कि ये संबुद्ध न बन पायें। वह चाहता है कि लोग इसी चक्र में पड़े रहें। बहुत हो तो देवलोक में चले जायें, अरे वहां पर ऐसा आनंद है, ऐसा आनंद... लोग उसमें पड़े रहें। यह-यह करो, तुमको देव लोक मिलेगा। लोग उसी में खुश रहें। किसी को उससे खुशी नहीं तो ऐसा ध्यान करो तो ब्रह्मलोक मिल जायेगा। वह इसी चक्र में लोगों को उलझाये रखना चाहता है। कोई सारे लोकों के परे चला जाय, जहां से पुनर्जन्म नहीं हो, यह उसे पसंद नहीं। इसलिए जैसे ही वे सम्यक संबुद्ध बने तो आकर कहता है कि आप मुक्त हो गये, अब छोड़ो इस जंजाल को। लोगों को सिखाने की बात क्यों करते हो? अरे, नहीं, मैं इसलिए सम्यक संबुद्ध नहीं बना हूं। वे सिखाते गये, सिखाते गये। एक बार फिर आकर कहता है- अब तो बहुत लोग सीख गये, आपके बहुत शिष्य हो गये, अब तो परिनिर्वाण ले लो। भगवान कहते हैं नहीं, हमारे चार तरह के संघ हैं- भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ और गृहस्थों में उपासक संघ, उपासिका संघ। जब ये चारों के चारों संघ, न केवल स्वयं धर्म में परिपुष्ट होंगे, बल्कि चारों के चारों- जब लोगों को धर्म सिखाने के लायक हो जायेंगे, और मुझे विश्वास हो जायेगा कि ये चारों के चारों धर्म सिखा रहे हैं, तब परिनिर्वाण लूंगा। तो वैशाली में परिनिर्वाण के तीन महीने पहले वह फिर आता है—अब तो महाराज! बहुत लोग तैयार हो गये न आपके। बहुत भिक्षु भी तैयार हो गये, जो स्वयं भी पक गये, लोगों को भी सिखा सकते है। बहुत भिक्षुणियां, गृहस्थ- उपासक-उपासिकाएं, औरों को सिखा सकते हैं। तब उन्होंने कहा, हां ठीक है और उन्होंने भविष्य वाणी कर दी कि तीन महीने के बाद जो वैशाख पूर्णिमा आ रही है, उस रात के समाप्त होने पर मैं अपना शरीर त्यागूंगा।

इससे एक बात स्पष्ट हुई कि चारों के चारों संघ पके हुए थे। यह दुर्भाग्य की बात हुई कि कुछ समय के बाद जो गृहस्थ थे उन्होंने कोई व्रत कर लिया, थोड़ा-सा ध्यान कर लिया, उसी में लग गये तो गृहस्थ आचार्य बहुत गिनती के रह गये। पर हमारे बड़े दादा गुरुजी—"लैडी सयाडो" जो कि बड़े दूरदर्शी थे, उन्होंने देखा कि १००-१२५ वर्ष बाद भगवान बुद्ध के २५०० वर्ष पूरे होंगे, तब यह विद्या भारत जायेगी और भारत में स्थापित होने के बाद सारे विश्व में फैलेगी। वे भारत आये, यहां की स्थिति देखी तो एक बात उनकी समझ में आयी कि आज भारत की यह अवस्था है कि अगर कोई भिक्षु वहां जा करके बुद्ध की शिक्षा सिखायेगा तो वे कहेंगे- अरे, यह तो बौद्ध धर्म है। लोगों के मन में एक पागलपन सवार है कि यह बौद्ध धर्म हमारे काम का नहीं है। कोई सुनेगा ही नहीं, पालन करना तो बहुत दूर। उस दूरदर्शी भिक्षु ने देखा कि कोई गृहस्थ जायेगा तो बात बन जायेगी। उसके बाद समय आयेगा कि सब सिखाने लगेंगे, पर पहले कोई गृहस्थ जाये, पर गृहस्थों में अभी तक कोई आचार्य नहीं है। मुझे गृहस्थ आचार्य तैयार करना है। बड़ा उपकार मानते हैं कि उन्होंने गृहस्थों के लिए दरवाजा खोला कि तुम भी विपश्यना सीखो। लोग विपश्यना सीखने लगे। बहुत थोड़े लोगों में से एक ऐसे आदर्श गृहस्थ आचार्य हुये—"सया तै जी", जिन्होंने एक आदर्श स्थापित किया कि जो गृहस्थ आचार्य होंगे, वे कैसे होंगे? कैसा जीवन होगा? और उनके शिष्य हुए मेरे धर्म-पिता "सयाजी ऊ बा खिन", जो इतने बड़े संत।

तो यह परम्परा गृहस्थों की होने के कारण भारत ने यह विद्या स्वीकार की। इसका अर्थ यह नहीं है कि भिक्षु लोग सिखा ही नहीं सकते। भारत के लोगों की ऐसी मानसिकता है, उनमें इतनी भ्रांतियां हैं जिनका शिकार मैं स्वयं भी हुआ। लेकिन ३१ वर्ष की उम्र में जब यह विद्या मुझे मिली तब

देखा कि इसमें कोई खोट ही नहीं। यह तो इतनी निर्दोष, निष्कलंक और कल्याणकारी है तो फिर हमारे यहां इसके खिलाफ दुनिया भर की फिजूल बातें क्यों होती हैं? उनकी वाणी का अध्ययन किया तो देखा, भाई! या तो नासमझी से या किसी आपसी झगड़े को ले करके बेबुनियाद बातें फैलायी गयीं, जिनका कोई औचित्य नहीं है।

अपने यहां कहावत है- बढ़ाते-बढ़ाते- तिल का ताड़ कर दिया, राई का पर्वत कर दिया। मैंने देखा अरे, यहां तो कोई तिल भी नहीं, ताड़ कैसे हो गया? यहां तो राई भी नहीं, पर्वत कैसे हो गया? तो भाई! अपना दुर्भाग्य रहा कि इतने वर्ष हम इससे वंचित रहे। अच्छा हुआ कि विद्या फिर आयी है, लोगों ने स्वीकार किया है। जो लोग नहीं आ पाते हैं, उनकी भ्रांतियां दूर हों। लोग शील-सदाचार का पालन करना सीखें, उसमें खोट क्या है? संसार की कोई ऐसी धर्म-परम्परा नहीं जो शील-सदाचार का विरोध करे। ये तो शील-सदाचार का पालन करना सिखाते हैं और उसका पालन करने के लिए मन को वश में करना सिखाते हैं। कौन विरोध करेगा? और मन को वश में करने के लिए जो आलंबन है वह सांस का है। जो सबके लिए एक जैसा है। हर एक उसका अभ्यास कर सकता है। और केवल मन को वश में करना ही नहीं, मन को जड़ों तक निर्मल करना है। ऐसा करने के लिए प्रज्ञा सिखाते हैं। शरीर और चित्त के पारस्परिक संबंधों से किस प्रकार संवेदनाओं के आधार पर विकार जागते हैं, और किस प्रकार निकाले जा सकते हैं। सब स्वीकार करते हैं। हिंदू हो, मुस्लिम हो..., भारतीय हो, पाकिस्तानी हो..., कुछ फर्क नहीं पड़ता। आदमी-आदमी है, सबका स्वभाव एक जैसा होता है। कैसे अपने स्वभाव को पलट दें और अच्छा जीवन जीने लगें - सब स्वीकार करते हैं। इन तीन बातों को छोड़ करके उस आदमी ने और कुछ नहीं सिखाया। लेकिन उसके मत्थे न जाने कितनी बातें जोड़ दी गयीं, जिनके कारण देश दो हजार वर्षों तक इस विद्या के लाभ से वंचित रहा। अब धीरे-धीरे लोगों की समझ में आ रहा है। उस भूल को लोग स्वीकार कर रहे हैं, बड़ी अच्छी बात। यहीं पर वह 'सुभद्र' जिसके मन में यह इच्छा जागी कि भगवान से यह विद्या सीखूं। उसका अपना कल्याण हुआ। लेकिन दूसरा वह 'सुभद्र' जो कहता है कि अच्छा हुआ, बूढ़ा मर गया, अब हम बंधन-मुक्त हो गये हैं, जो चाहें सो करेंगे। उसकी वजह से यह सारी विद्या कायम रखी गयी, परियत्ति भी, पटिपत्ति भी, माने वाणी भी और विपश्यना विद्या भी, दोनों कायम रहीं और हमारा बहुत बड़ा कल्याण हुआ। इस माने में इस स्थान का अपना एक बहुत बड़ा महत्त्व है। यहां ध्यान करके हम अपना मंगल साध लें!

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का.

(सहायक आचार्य नियुक्तियां आदि अगले अंक में।)

दोहे धर्म के

सम्मुख दीपङ्कर खड़े, जो सम्यक संबुद्ध।
पाये विमल विपश्यना, बने मुक्त हो शुद्ध।।

एक अकेला मैं तरूं, यह तो अनुचित स्वार्थ।
औरों को तारे बिना, सधे नहीं परमार्थ।।

सहज प्राप्त है मुक्ति पर, कर दूं इसका त्याग।
और पारमी जोड़ कर, बनूं बुद्ध बड़भाग।।

हैं इस भव संसार में, कितने प्राणी दीन।
इनके भी बंधन खुलें, इनके हों दुख क्षीण।।

दूहा धरम रा

चालत-चालत धरम पथ, चित्त बिमल जदि होय।
तो सम्यक संबुद्ध री, सही बंदना सोय।।

या हि बुद्ध री बंदना, यो हि बुद्ध सम्मान।
प्रग्या करुणा प्यार स्यूं, भरल्यां तन मन प्राण।।

संबुध थारी बोधि रो, किसो' क मंगळ घोस।
सूत्यां नै जाग्रति मिलै, मदहोसां नै होस।।

बोधि महा महिमामयी, माटी सुवरण होय।
कांकर तो हीरा हुवै, पत्थर पारस होय।।

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा0) लिमिटेड
8, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

मोरया ट्रेडिंग कंपनी
सर्वो स्टॉकिस्ट-इंडियन ऑईल, 74, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.6, अजिंठा चौक, जलगांव - 425 003, फोन. नं. 0257-2210372, 2212877
मोबा.09423187301, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

"विपश्यना विशोधन विन्यास" के लिए प्रकाशक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- 422 403, दूरभाष :(02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, 259, सीकॉफ लिमिटेड, 69 एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-422 007. बुद्धवर्ष 2569, 14 जून, 2026, वर्ष 2, अंक 4

वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ 100.00, (भारत के बाहर भेजने के लिए US $ 50) "विपश्यना" (संशोधित) RNI रजि. नं. **19156**, **प्रति अंक शुल्क ₹ 0.00**

Posting day- **14th of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)
DATE OF PRINTING: 10 JUNE, 2026, DATE OF PUBLICATION: 14 JUNE, 2026

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244998, 244076, 244086,
244144, 244440, मोबा.: 9405618869
Email: vri_admin@vridhamma.org;
Course Booking: info.giri@vridhamma.org
Website: www.vridhamma.org